and a very large private sector. But the distribution of power as well as resources is concentrated in the hands of few people. This concentration of economic power is increasing day by day. There is nothing to stop it from further expanding. At the same time, we are aware of the consequences of above. Basically, these increasing economic power lead to the various kind of violence, class war, creation of a new bureaucratic class, etc. But trusteeship provides an alternative mechanism for reducing the concentration of economic power. But the question then arises: To what extent is the conception of trusteeship applicable in India and what are the chances of its survival?

From this discussion, it becomes clear that the concept of trusteeship has generally been a matter of negligence. As we have seen that in recent times neither capitalistic economy nor socialist economy is successful in dealing with the global economic crisis which has occurred in last five to ten years. Both of these economics were in the verge of collapse. In this aspect of economy, the relevance of the trusteeship in today's India is desirable.

BIBLIOGRAPHY

Primary Sources

- Gandhi, M.K., "Trusteeship" Compiled by Ravindra Kelkar, Navjivan Publishing, Ahmedabad, 1960.
- Gandhi, M.K., "My theory of trusteeship" Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay, 1970.
- Gandhi, M.K. "From Yarvada mandir", Navajivan Publishing House, Ahmedabad, 1935.
- Gandhi, M.K., "Capital and labour, Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay, 1970.
- Gandhi, M.K. "Economic and Industrial life and Relations" Navjivan Publishing, Ahmedabad, 1959, Part-I.

SECONDARY SOURCES

- Gadre Kamal, "The coming struggle for trusteeship" Trusteeship forum, 1972.
- Diwan, Ramesh, "Trusteeship and Decentralization, Gandhi Marg, 1980.
- Marchent Vijay, "Trusteeship Management", Mumbai, 1966.
- Sethi, J.D., "Trusteeship", Gandhi Shanti pratishthan, New Delhi, 1970.
- Biswas, S.C. (ed.), "Gandhi, Theory and Practice, Social Impact and contemporary Relevance", Indian Institute of Advanced Study, Shimla, 1969.

****

नमो तस्य भगवतों अरहतो सम्मासम्बुद्धस्य
बौद्ध धर्म के विकास में
समाजिक योगदान

डॉ० तपेशवर कुमार*

डॉ0 अमरनाथ सिंह**

बौद्ध धर्म के प्रणेता का जन्म लगभग 563 ई0 पू0 कौशाल जनपद के षाक्य गणराज्य के अंतर्गत कपिलवस्तु के लूम्बनी नामक वन में हुआ था, जिन्हें हमलोग गौतम बुद्ध के नाम से जानते है। जिनका धर्म पूरी दुनिया में अकाट्य बढ़ता चला गया उसका मुख्य कारण उनके विचारों को कोई भी धर्म खण्डन नहीं किया।

29 वर्ष की अवस्था में यशोधरा से उत्पन्न राहूल का जन्म सिद्धार्थ के पुत्र रूप में हुआ था। राहुल के जन्म के दिन ही कुमार सिद्धार्थ गृह त्याग किए थे। जिसे महाभिनिष्क्रमण कहा जाता है। महामिनिश्क्रमण में उनका सारथी छन्दक और अश्व कन्थक साथ था। अनोमा नदी तट पर अपने सारथी और अश्व को छोड़कर काशाय वस्त्र धारण कर राजगृह की ओर प्रस्थान किए। उस समय राजगृह सम्पूर्ण जन्बुद्वीप में शिक्षा और सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में विख्यात था। उस समय छः दार्शनिकों के पास जाकर आध्यात्मिक से संबंधित विचार विमर्श किया परन्तु वे सन्तुष्ट नहीं हुए। तत्पश्चात वे उदक राम पुत और अलार कलाम आध्यामिक गुरू से योग शिक्षा ग्रहण किया। उन दोनों योग गुरूओं से भी उन्हें सन्तुष्टि नहीं मिली। तो वे तत्कालीन उरूवेला के निञंजना नदी के तट पर छः वर्षों तक कठोर तपस्या की फिर भी उन्हें सम्बोधि लाभ नहीं हुआ। अन्त में चार आर्य सत्यों का साक्षात्कार कर 491 ई0पू0 के वैशाखी पूर्णिमा को आध्यात्मिक जगत में बुद्ध के नाम से प्रचलित हुए। इसी वर्ष ऋशिपतन मृगदाय में चार आर्य सत्यों तथा आर्य आष्टांगिक मार्ग से सम्बंधित प्रवचन से पंचवर्गीय भिक्षुओं को लाभान्वित किया। चार आर्य सत्य एवं आष्टांगिक मार्ग से सम्बन्धित बुद्ध का वच नही धर्मचक्र प्रवर्तन के नाम से प्रचलित हुआ।

तत्कालीन जम्बुद्वीप के मज्झिम मण्डल में भगवान बुद्ध अस्सी वर्षों तक पदचारिका करते हुए अपने सिद्धातों के प्रचार में बिताया चूँकि भगवान बुद्ध 35

*जहानाबाद कॉलेज, जहानाबाद

**निर्देशक एस0 एन0 सिन्हा कॉलेज जहानाबाद

वर्ष की अवस्था में सम्बोधि लाभ किए और 45 वर्षावास मज्झममंडल के भागों में व्यतीत किए इन वर्षावासो के अनन्तर भगवान बुद्ध मज्झिम मंडल के जनपदों में घूम–घूम कर अपने धर्म का प्रचार करते रहे। तत्कालीन भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों से उनके अनुयायी बने और उपासकों और उपासिकाओं में उनमें प्रवचन का प्रभाव बढ़ते गया। पहले अनुयायी वाराणसी के पंचवर्गीय भिक्षु थे। तत्पष्चात काशी के श्रेष्ठी वर्ग के लोग भी उनके अनुयायी बने। बौद्ध भिक्षुओं में अधिक संख्या मगध वासियों की हुई । जटिल बन्धुओं के एक हजार शिष्य बुद्ध के अनुयायी बने। उसके बाद राजगृह के संजय नामक परिव्राजक के 250 शिष्य बुद्ध के अनुयायी बने मगध नरेश बिम्बिसार का भगवान बुद्ध में श्रद्धालु होकर संघ को बेलुवन दान संद्धर्भ की प्रगति का एक नया अध्याय शुरू हुआ था। वैशाली के आम्रपाली द्वारा आम्रवन का दान तथा अनाथ पिंडिक ने श्रावस्ती में बिहारों का निर्माण कर बुद्ध संघ को सुपुर्द किया गया इस पुनीत कार्य में मगध राज बिम्बिसार का सहयोग पूर्ण रूपेण रहा। व्यक्तिगत रूप से बुद्ध भी मनुष्य मात्र थे। किन्तु सम्यक सम्बुद्ध होने के नाते विशुद्ध अनुभूति स्वरूप ही है यही उनके जीवन का लोकोत्तर स्वरूप है। भगवान बुद्ध सभी मानवीय संगतियों का अतिक्रमण कर चूके थे। उनके लिए सुख–दुःख रूपी संवेदनाओं का अनुभव करना बाकी नहीं बचा था। अतः बुद्ध के चित्त का अवस्था को आज तक किसी ने झांककर नहीं देखा। गौतम बुद्ध महापुरूष के साथ–साथ मनुष्यता और ज्ञान के एक नए युग का प्रवर्त्तक थे।

भगवान बुद्ध जिस समय ज्ञान की खोजकर रहे थे, उस समय मनुष्य जीवन में उन सब आरोह, अवरोहों, भयों और विशमताओं को अनुभव किया था। जो एक सत्व गवेषक को कभी भी करनी पड़ती है। महाभिनिष्क्रमण काल से लेकर उरूवेला की लोभहर्षक तपस्या तक के बुद्ध जीवन में पूर्ववर्ती वैदिक और उत्तर वैदिक कालीन साधनाओं का सारा इतिहास ही सन्निहित हैं। भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता थी उनकी स्वनिरपेक्षता। उनके द्वारा अहं का सम्पूर्ण विसर्जन किया जा चुका था। बुद्ध के नाम का व्यवहार आज हम करते है किन्तु वह केवल पहचान के लिए है। ज्ञाता मिटकर स्वयं ज्ञान हो गया। विशुद्ध बोध ही बुद्ध के रूप में मूर्तिमान हो उठा। बेचारा षुद्धोद्धन इस तत्व को नही समझ सका। इसलिए उसे अपने पुत्र का कपिलवस्तु की गलीयों में भिक्षा पात्र लेकर मिलना अच्छा नहीं लगा। परन्तु जब उसे पता लगा कि मेरा पुत्र वह गौतम वंश में नहीं बल्कि बुद्धवंश में उत्पन्न हुआ हैं , तो उनकी आंखें की खुली। उसके बाद उसकी पत्नी जिन्होंने गौतम को गोद में खिलाया था, बुद्ध की शरण गये। अपनेपन की भावना से समझने, अपने किसी कार्य का अनुरंजित नहीं होने दिया।

गौतम अनाशक्ति के जीते जागते उदाहरण थे। बुद्ध के जीवन में आशक्ति भी सुक्ष्म गंध भी नहीं मिलता है। इसी कारण अपने वाद संघ संचालन करने के लिए

उन्होंने जानबुझकर किसी व्यक्ति को उसका नाम तक नहीं चुना। अमूर्त धर्म की देख–रेख में ही उन्होंनों संघ को छोड़ा। व्यक्तित्व की इतनी उपेक्षा की इतिहास में दूसरी मिसाल नहीं हैं। भगवान बुद्ध मानवीय भावनाओं से रहित निवृत्ति परायण महापुरूष थे। वे देव और देवादि देव थे। परन्तु देवावत पाषाण नहीं थें। मनुष्यता क्या चीज है, उनका जीवन आदर्श पाठ है। पूर्ण अनाशक्त होते हुए भी उन्होंने संघ की स्थापना की। प्रत्येक साधक–साधिकाओं के जीवन की अलग–अलग चिंता की और अपने स्वभाव के लोक जीवन पर अमिट छाप छोड़ गए जो आज भी है।

भगवान बुद्ध के विषय के कहा गया है कि वे बाहर–भीतर एक थे। जिन नियमों का उन्होनें उपदेश दिया, उनका स्वयं भी पालन किया। उनमें बुद्धत्व की पूर्ण क्षमता थी। संयुक्त निकाय के एक प्रसंग को लिया जा सकता है। एक दिन भगवान पूर्णमासी के दिन खुली जगह में बैठे थे। भिक्षु लोग भविष्य के संयम के लिए अपने अपराध की देशना कर रहे थे। भगवान ने भिक्षुओं को सम्बोधित कर कहा यदि मेरे अन्दर कोई काया या विचार सम्बन्धि दोष देखते हो तो मुझे बतावें। यहाँ पर उक्ति भी चरितार्थ होती है 'निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय। बिन साबुन पानी बिना निर्मल करे सुभाय ।।

उन्होने मानवीय पुरूषार्थ की महिमा गाते हुए, सदा यही कहा की उनके द्वारा जो कुछ लक्ष्य है वही उन्होंने पाया। भिक्षुओं चार आर्य सत्य के अज्ञान के कारण ही दीर्घकाल से मेरा और तुम्हारा यही अरमान संसरण आवागमन हो रहा है। मनुष्यता को जानने वाले डा0 ढाल ने ठीक ही कहा है '' यह उच्चत्तम हैं, इससे आगे कोई मनुष्य नहीं जा सकता है।'' भगवान बुद्ध राग द्वेष की निवृत्ति के लिए एकान्तवास को आवश्यक साधन मानते थे। सभी दोषों में पूर्ण विमुक्ति होकर भी वे एकान्तवास करते थे। यह एकान्तवास या अरण्य का सेवन दो बातों के लिए जाते थे, प्रथम इस ह्रदयमान शरीर के सुख विहार के लिए और उसके आगे–आगे आनेवाली जनता पर अनुकम्पा के लिए। जिससे मेरा अनुसरण कर वह सुफल का भागी बने।

भगवान बुद्ध निन्दा और स्तुती दोनों से परे थे। इसका उदाहरण गौतम के शवसुर ने जब उन्हें वैराग्य वृत्ति के लिए कपिलवस्तु में गालियाँ दी तो बदले में उनके मुख्य से केवल मन्द मुस्कान ही वे निकाल सके। कुछ लोगों ने गौतम बुद्ध को वृषल, चोर, गधा अथवा व्यभीचारी तक कहे। दूसरों ने उन्हें महर्षि देवातिदवे कहकर पूजा। किन्तु गौतम दोनों ही हालातों में पूर्ण अनासक्त रहे।

भगवान बुद्ध का उपदेश संवादों के रूप में होता था। संवादों के बीच में मार्मिक उपमाएँ दिया करते थे। अपने विरोधियों की परीक्षा करते–करते वे उस सिद्धांत तक पहुंचते थे। जिसे वे सिखाना चाहते थे। दूसरे मतों के मानने वालों के साथ उनका सहानुभूति का व्यवहार था। उरूवेल कश्यप ने, जिसे सारा अंग और मगध देश के निवासी पूजते थे, सम्मान का भगवान ने बड़ा ध्यान रखा।

तथागत ने किसी सम्प्रदाय की निंदा नहीं की। उनका मार्ग मैत्री और करूणा का था। उन्हें अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा नहीं थी। भगवान बुद्ध ने किसी धर्म एवं सम्प्रदाय की निंदा नहीं की।

बुद्ध काल में भारतीय समाज की स्थिति दयनीय थी उस समय भी जाति भेद अपनी पराकाष्ठा पर पहूँच गई थी। जाति के अनुसार उँच नीच की भावना अति प्रबल थी। बुद्धकालीन समाज बहुसंख्यक जनसमुदाय लौकिक ब्रह्ममण धर्म का अनुयायी था। जिसमें वैदिक यज्ञो की प्रधानता थी। तत्कालिन समाज पर ब्राह्ममण वर्ग हावी था। दान में उन्हे गाय, वस्त्राभूषण, शयन सामग्री, स्वर्ण रजत सभी मिलते थे। उन्हे राजाओं द्वारा भूमिदान भी मिलता था। उस समय दास प्रथा का प्रचलन था। उस समय के बहुसंख्यक लोग गरीब थे। वर्ण व्यवस्था रहने के कारण शुद्रो के वेद, शास्त्र आदि के अध्ययन श्रवण आदि निषिद्ध था। उन्हीं बुराइयों को देखकर भगवान बुद्ध घर से बेघर हो सन्यासी बने। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात धर्म के पाखंडियों का विरोध किया।

भगवान बुद्ध की शिक्षा खास कर समाज के पिछड़े लोगो के लिए था। भगवान बुद्ध ने मोक्ष के मार्ग को प्रसस्त किया जिससे सभी वर्ग के लोगों को लाभ मिला। बुद्ध संघ सभी वर्णो के लोगो के लिए द्वार खुला था। भगवान बुद्ध का मानना था कि जन्म से कोई बड़ा नहीं होता, बल्कि कर्म से बड़ा होता है। जन्म से कोई वृषल नहीं होता है, जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। कर्म से वृषल या ब्राह्ममण होता है। सुन्दरीक भारद्वाज सुत में भगवान बुद्ध उसे कहते हैं कि जातिमत पूछो, आचरण पूछो। बुद्ध के मतानुसार तप, वृहामचर्य संयम और दम से ब्राह्मण नहीं होता है। जिसमें सत्य और धर्म है, वहीं ब्राह्मण है। बौद्ध दर्शन के अनुसार लोक में जो नाना प्रकार के संज्ञाऐं प्रचलित है, वें भिक्षु भाव ग्रहण करने पर लुप्त हो जाती हैं जिस प्रकार विभिन्न नदियाँ समुद्र में मिल कर अपने नाम रूप को खो देती है। बौद्ध संघ में सबके लिए स्थान बराबर था।

भगवान बुद्ध का कार्य क्षेत्र मज्झिम देश था। उनके काल तक ब्राह्मणों का जोर नहीं पकड़ पाया था। खास–खास जगहो में उनका आधिपत्य था। ब्राह्मण केवल ज्ञान और तपस्या अर्जित करके वें स्वंय धनोपार्जन कर लेते थे। भगवान बुद्ध उसके विरोधी थे। भगवान बुद्ध और उनके संघ को भिक्षुओं को धन से कोई खास मतलब नहीं था। दिन में सिर्फ एक बार भोजन और तीन चीवरों को रखने का प्रावधान था। भगवान बुद्ध की शिक्षा व्यवहारिक थी। फलतः समाज के अधिकांश लोग बुद्ध के धर्म की ओर आकर्षित हुए। साथ ही साथ उनके धर्म में समाज की सहमति भी प्राप्त हुई। समाज कें हर स्तर यथा किसान, मजदूर, व्यवसायी, राजा आदि ने बुद्ध धर्म को स्वीकार किया। मगध राज , बिम्बिसार कोशल राज प्रसेन जीत अवन्ती के राजा चण्डप्रदोत और वंश के राजा उदययन

के अलावा शाक्य गणतंत्र और लिच्छवी गणतंत्र आदि के द्वारा बुद्ध के धर्म विस्तार में काफी सहयोग मिला। इसके अतिरिक्त मगध के श्रेष्ठी, श्रावस्ती के श्रेष्ठी अनाथपिंडिक, विशाखा निगार माता, अंग के श्रेष्ठी धनंजय आदि ने भी बुद्ध संघ को आर्थिक सहायता दिया करते थे। ब्राह्मण समाज ने भी बुद्ध धर्म के प्रचार में काफी सहयोग किया। कुटदन्त ब्राह्मण, चम्पा नगरी का सोमउण्ड ब्राह्मण आदि ने बुद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में सहायता प्रदान किए थे। भगवान बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत मौद गल्यायण, महाकाश्यप रेवत, मोगलिपुततिष्य, नागसेन नागार्जुन अश्वघोष, असंग, बसुबधु, बुद्धघोष आदि ब्राह्मण ही थे।

मज्झिम देश की नारियों ने भी बुद्ध धर्म के प्रचार में काफी सहयोग प्रदान की थी। वैशाली गणतंत्र की वेश्या ने प्रचार में काफी सहयोग प्रदान की थी। वैशाली गणतंत्र की वेश्या अम्बपाली अपना आम्रवन बुद्वसंघ को दान में दी थी। अन्ततः वह भिक्षुणी बनकर अर्हत प्राप्त की। श्रेष्ठी पत्नी विशाखा भिक्षु बनी। श्रावस्ती ने पूर्वाराम बनाकर बुद्ध संघ को दान में दी थी। प्रसेनजीत की पत्नि मल्लिका ने भी बौद्ध धर्म के प्रचार में काफी सहयोग प्रदान की थी। राजगृह सेठ की पुत्री धर्मदिशा भिक्षु संघ में सम्मिलित होकर अर्हत प्राप्त की थी।

गृहस्थो की पत्नियों ने भी बुद्ध संघ में प्रवेश कर अर्हत प्राप्त की थी। मज्झिम देश की गरीब जनता की भावना को भी भगवान बुद्ध समझते थे। यहाँ की गरीब जनता अशिक्षित भी थी। अपनी अविधा और उच्चवर्ग के सत्संग के अभाव के कारण मज्झिम देश की गरीब जनता अपनी सांस्कृतिक भूख को, भूत प्रेतो का पूजा तथा उत्सवों में खर्च कर देती थी, जिसके सृजनहार वेदज्ञ थे। यहाँ की गरीब जनता उन्हीं विधि क्रियाओं के द्वारा अपने उद्धार के लिए मार्ग प्रशस्त करते थे, जिसे अपनाकर बुद्ध ने गरीबो के मन और भावना को जगाया। बौद्ध धर्म सर्वसाधारण के लिए भी सुलभ बना दिया। ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार कर बुद्ध के भूत–प्रेत आदि को जो अस्तित्व स्वीकार किया। वह लोक भावना की अपेक्षा को ध्यान में रखकर ही किया था। फलतः बौद्ध धर्म के निकास में बुद्धकालीन समाज का बहुत बड़ा योगदान रहा। जिसके कारण आज बौद्ध धर्म पूरी दूनियाँ में सफलता पूर्वक अपनी जगह बनाई।

सन्दर्भ –

(क) सच्च संग्रहों पृ0 5–8, 13–17
(ख) मझिम निकाय पृ0 374–375
(ग) पालि साहित्य का इतिहास पृ0–613–614
(घ) धम्मपद पृ0–11,8,9
(ड.) उदाम